

मुगलकालीन कथक नृत्य के विकास में गायन शैलियों की भूमिका

डॉ० यास्मीन सिंह

कथक नृत्यांगना, भोपाल (म.प्र.)

मुगल काल मुख्य रूप से अकबर के सिंहासनारूढ़ होने से स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि इससे पूर्व मुगल शासकों को भारत में राजनैतिक रूप से वैसा स्थायित्व प्राप्त नहीं था, जैसा कि अकबर के काल में प्राप्त हुआ। इस आधार पर यदि हिन्दी साहित्य की दृष्टि से इस कालावधि को देखें तो ज्ञात होता है, कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1700 ई. से 1900 ई. तक की कालावधि को 'रीतिकाल' कहा है। विद्वानों का मत है कि रीतिग्रन्थों के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। रीतिकालीन कवियों ने प्रमुख रूप से रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। रीतिकालीन काव्यों में जिस प्रकार श्रृंगारिक रचनाएँ प्रमुखता से की गई, उस आधार पर विद्वानों ने रीतिकाल को 'श्रृंगारकाल' भी कहा है। इससे इस बात की सम्भावना प्रबल हो जाती है, कि काव्य की इस प्रवृत्ति का प्रभाव गायन शैली पर भी पड़ा हो। साथ-ही-साथ गायन की नवीन शैलियाँ भी मुगल काल में विशेष रूप से नवसृजित की गईं। इनमें ख्याल, तुमरी, गज़ल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय गायन शैलियाँ रही हैं। चूँकि गायन का नृत्य में विशेष योग होता है, अतः इन नवीन गायन विधाओं ने कथक नृत्य को भी प्रभावित किया है, ऐसा स्वीकार करने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती।

साहित्य की दृष्टि से रीतिकाल में गायन, वादन और नृत्य आदि कलाओं का दरबारों में पदार्पण हो चुका था। अकबर के नवरत्नों में से एक तानसेन गायन कला का प्रकाण्ड विद्वान था। तानसेन ने अकबर के दरबारी गायक के रूप में रहते हुए भारतीय शास्त्रीय संगीत (गायन) के क्षेत्र में अनेक प्रयोग भी किये गये और कहा जाता है, कि उन्होंने अनेक नवीन रागों का भी सृजन किया। गायन के साथ-साथ समान रूप से वादन और नृत्य को दरबारों में स्थान प्राप्त हुआ।

भारतीय गायन शैली के विषय में जो सामग्री प्राप्त होती है उनसे यही प्रतीत होता है, कि गायन के क्षेत्र में भारतीय कला समृद्ध रही है और इसके साथ-ही-साथ वादन और नृत्य भी। गायन की जिन नवीन विधाओं का जन्म इस काल में हुआ उनमें गज़ल, ख्याल शैली आदि प्रमुख हैं। इसके साथ-साथ हिन्दू राजदरबार भी इस परिवर्तन से अछूते नहीं थे। इन दरबारों में भजन के साथ-साथ लोक गायन शैलियों को उपशास्त्रीय अंग से गाये जाने की परम्परा प्रारंभ हुई। इस गायन शैलियों में तुमरी, दादरा, टप्पा आदि उल्लेखनीय हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. असीत कुमार बनर्जी का मत विचारणीय है— "मुसलमानों के पश्चात् भारतीय संगीत की मूलधारा प्रवाहमान रही। मुसलमान संगीतज्ञों से कुछ प्रेमपूर्वक या बलपूर्वक बहुत कुछ प्राप्त किया और अपनी विशिष्टता प्रमाणित करनी चाही। परन्तु इस मेल से हिन्दुस्तानी संगीत की विभिन्न धारायें प्रस्फुटित हुईं। ध्रुपद, धमार, ख्याल, तुमरी, टप्पा, गज़ल आदि गायन शैलियों का जन्म हुआ।" मुगल काल में ही उक्त वर्णित गीत शैलियों के समानान्तर भजन गाने की परम्परा भी चल रही थी। भारत में सनातन काल से मंदिरों में भजन गाने की सुदीर्घ परम्परा रही है। गायक कलाकारों द्वारा गायी जाने वाली शैली विशिष्ट में निहित भावों को तत्कालीन कथक नर्तक अपनी भाव-भंगिमाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते थे। कथक नृत्य के विषय में जैसा कि कहा गया है, कि इस नृत्य को नया रूप-स्वरूप मुगल काल में ही प्राप्त हुआ। इस नृत्य शैली के तकनीकी पक्ष का विकास भी इस कालावधि में अत्यधिक हुआ। इसके साथ-ही-साथ दरबारों में गज़ल, तुमरी जैसी शैलियों में भाव प्रदर्शन करने की नवीन परम्परा भी लक्षित है।

कथक नृत्य और ध्रुपद गायन शैली

विद्वानों का एक वर्ग ध्रुपद गायन शैली का आविष्कार ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को मानता है। इस संबंध में हरिप्रसाद नायक लिखते हैं, कि— 'ग्वालियर के तोमर वंशी राजा मानसिंह संगीत शास्त्र के उन्नायक एवं आचार्य थे। उनका रचा मानकुतूहल नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। आपने ध्रुपद पद्धति का आविष्कार किया।'²

विद्वानों ने शैली के प्रयोग, विकास और प्रचार-प्रसार के आधार पर ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर के द्वारा ध्रुपद शैली के आविष्कृत होना बताया है। अकबर के दरबार में तानसेन प्रसिद्ध ध्रुपद गायक के रूप में जग प्रसिद्ध रहे हैं। कथक नृत्य ध्रुपद गायन शैली के प्रयोग का जहाँ तक प्रश्न है, तो विभिन्न मुस्लिम और हिन्दू राजाओं के दरबारों में कथकों को राज्याश्रय प्राप्त था। साथ ही, मुगल काल में ध्रुपद गायन शैली

भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। इन सभी बातों के मध्य एक अन्य बात यह भी है, कि कथक नृत्य अपने प्राचीन स्वरूप में प्रचलित था चाहे उसका नाम जो भी रहा हो। इससे इस बात की प्रबल सम्भावना है, कि मुगल काल में ख्याल शैली के जन्म से पूर्व ध्रुपद शैली पर ही नृत्य करने की परम्परा रही है। इस संबंध में आदिनाथ उपाध्याय का मत है, कि— 'स्वर, ताल और लय का जितना उन्मुक्त और अनूठा समन्वय ध्रुपद में दिखाई देता है, उतना संभवतः किसी दूसरी विधा में नहीं। दूसरी ओर गीत, वाद्य और नृत्य से इसकी सम्बद्धता भी अपने आप में अद्वितीय है। ऐसा प्रतीत होता है, कि मध्ययुगीन गुणीजनों के बीच ध्रुपद को सर्वश्रेष्ठ शैली का सम्मान प्राप्त होने का यह भी एक प्रमुख कारण रहा होगा।'³

डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी ने ध्रुपद गायन शैली पर होने वाले नृत्य को ध्रुपद नृत्य कहा है— "नेपाल के ध्रुपद गायक श्री टी.एल. राणा ने बताया कि— नेपाल दरबार में कुछ वर्ष पूर्व तक यह परम्परा विद्यमान थी। उनकी पाँच गुरुमाताओं में से एक या दो को ध्रुपद के साथ 'हेला' (भाव प्रधान कथक नृत्य) करते हुए उन्होंने स्वयं देखा है। उनके साथ श्रीराणा की गुरुबहन वीणा देवी ही मृदंग पर संगत करती थीं।"⁴

द्विवेदी जी के उक्त कथन से यह तथ्य और भी अधिक पुष्ट हो जाता है, कि ध्रुपद गायन शैली में नृत्य अवश्य ही होता था। साथ ही वह नृत्य निश्चित रूप से कथक ही था। प्रेमलता जी द्वारा उल्लिखित सहसरस की बात करें, तो इसमें संकलित पदों में ध्रुपद-नृत्य के लक्षण प्राप्त होते हैं—

"ध्रुपद नाचत गत बहुत और तरंग उपजै बार-बार।

कत ना संभारी मान पाई बहुत मौतन के तार-तार।।"⁵

उक्त पद में ध्रुपद नृत्य का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। 'ध्रुपद नाचत' अर्थात् ध्रुपद के पदों पर नृत्य या ध्रुपद-नृत्य ही इसका मुख्य आशय है। द्विवेदी जी ने भी नायक बख्शू के एक पद का उल्लेख किया है, जिसमें कथक नृत्य के लक्षण स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं—

वस्तुतः उक्त अध्ययन से स्पष्ट है, कि ध्रुपद गायन शैली मुगल काल में राजा मानसिंह तोमर व अन्य राजाओं व नवाबों के राजत्व काल में विशिष्ट गायन शैली के रूप में प्रचलित थी। साथ ही लिखित साक्ष्यों के आधार पर यह बात भी पुष्ट हो जाती है, कि ध्रुपद के साथ नृत्य प्रस्तुत होता था। मुगलकाल में होने वाले जिस ध्रुपद-नृत्य की बात विभिन्न विद्वानों द्वारा सप्रमाण की गई है उससे यह सिद्ध हो जाता है, कि वह नृत्य निश्चित रूप से 'कथक' ही रहा होगा।

कथक नृत्य और ख्याल गायन शैली

उत्तर भारतीय गायन शैलियों में 'ख्याल' एक प्रसिद्ध गायन शैली है। इस गायन शैली के इतिहास, तकनीक आदि सांगीतिक पक्षों के साथ-साथ कथक नृत्य के साथ इसके तारतम्य की चर्चा से पूर्व 'ख्याल' शब्द पर चर्चा आवश्यक और प्रासंगिक हो जाती है।

'ख्याल' शब्द का सामान्य शब्दों में अर्थ है— विचार, मत, कल्पना आदि। ख्याल गायन शैली में मुख्यतः गायन कलाकार द्वारा स्वर और राग पर अधिक बल दिया जाता है तथा इसमें प्रयुक्त होने वाली बंदिश में निहित पद गौण होते हैं। दूसरी प्रमुख बात यह है, कि ख्याल गायन के समय उपज के माध्यम से वह नये-नये प्रयोग करता है। ख्याल शैली में किये जाने वाले उपज तात्कालिक होते हैं। ख्याल गायक अपनी कल्पना, रचनात्मकता और अपनी साधना के बल पर स्वर, राग, आलाप आदि तत्वों के आधार पर उपज करता रहता है। जबकि नृत्य में भाव प्रमुख होते हैं, जो बंदिश में निहित शब्दों और शब्दों से बने काव्य खण्ड पर निर्भर होते हैं। अतएव ख्याल गायन शैली के साथ नृत्य का तारतम्य स्थापित नहीं हो पाता।

ख्याल शैली भले ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की सर्वथा लोकप्रिय शैली के रूप में स्थापित रही हो, परन्तु प्रमाणों के अभाव में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, कि इस गायन शैली में कथक नृत्य और अन्य कोई नृत्य मुगल काल में होता होगा।

कथक नृत्य और धमार गायन शैली

ध्रुपद की भाँति ही धमार गायन शैली की परम्परा भी प्राचीन मानी जाती है। धमार शैली, गायन की एक ऐसी विधा है, जिसका स्वरूप तो शास्त्रीय है, किन्तु इसकी आत्मा में होली के रंग और रासलीला बसी हुई है। ध्रुपद की भाँति ही इस शैली में बंदिश के पूर्व 'नोम-तोम' का आलाप, बंदिश, तत्पश्चात् बोलबाँट, लयबाँट आदि का प्रयोग किया जाता है।

चूँकि धमार में पदों का विशेष आकर्षण रहता है, जो नृत्य के लिए भी उचित वातावरण की सृष्टि करने में सक्षम होता है। जिस प्रकार मुगल काल में ध्रुपद और धमार गायन शैलियों के प्रचलन संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि निश्चित रूप से धमार गायन शैली में नृत्य करने की परम्परा

रही होगी। धमार गायन के श्रृंगारिक विषय, नायक-नायिका का सुन्दर चित्रण, बढ़ी हुई लय में गायन आदि बातें इस शैली को नृत्योचित बनाते हैं।

कथक नृत्य और त्रिवट गायन शैली

भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रबंध के विविध प्रकार समय-समय पर प्रचलित रहे हैं। त्रिवट, शब्द में 'त्रि' से आशय 'तीन' से है, और 'वट' से तात्पर्य 'समूह' या 'इकाई' से है। अर्थात् त्रिवट की रचनाओं में निरर्थक और सार्थक शब्दों के साथ-साथ धर्म, अर्थ और कामतत्त्व भाव रूप में समाहित होते हैं। इस प्रकार निरर्थक, सार्थक और भावप्रधान शब्दों का समूह, जो ताल व लय में निबद्ध हों, ऐसी रचना त्रिवट कही जा सकती है। तानसेन की एक रचना प्राप्त होती है, जिसमें त्रिवट का महत्व उजागर होता है—

नाद नगर बसायो सुरपति
हीरा पै पाट नग लगे खरज जंजीर
त्रेवट कुँजी नामें ध्रुवपद
सो नग छिपाये।।
जौहरी मीयां तानसेन गाहक
जलालुद्दीन जिन याको
कोल कीनों अकवर पारखी पायो।।

त्रिवट में निहित गुण, कथक नृत्य के रचनात्मक पक्ष से साम्य प्रतीत होते हैं, जिसके कारण त्रिवट का सम्बन्ध कथक नृत्य से सहज ही स्थापित हो जाता है। कथक नृत्य में प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न रचनाओं में भी निरर्थक, सार्थक शब्दों के भावाभिव्यक्ति की परम्परा प्राचीन रही है। 'तबला-पखावज के बोलों का स्थायी-अन्तरा बना लिया जाता है, फिर उस बंदिश पर नृत्य हस्तकों द्वारा नृत्य किया जाता है। इसे ही त्रिवट या त्रिवट कहते हैं। त्रिवट की परम्परा बहुत पुरानी है।⁶ त्रिवट की प्राचीनता के आधार पर यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है, कि मुगल कालीन हिन्दू और मुस्लिम दरबारों में इस गायन शैली पर कथक नृत्य होता होगा। कथक नृत्य में तबला और पखावज के बोलों पर नृत्य करने की परम्परा संभवतः त्रिवट जैसी गायन शैलियों के माध्यम से प्रारंभ हुआ हो, क्योंकि बोलों पर नृत्य अत्यन्त आकर्षक, चमत्कारिक वातावरण की सृष्टि करता है, जो दर्शकों को भी एकाएक अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

कथक नृत्य और तराना गायन शैली

'तराना' एक फ़ारसी शब्द है, जिसका अर्थ होता है— गाना, नगम या एक विशेष प्रकार का गीत। तराना शब्द का सम्बन्ध स्वर और शब्द दोनों से होता है। ताल वाद्य के बोलों एवं तंत्र वाद्य के सहयोग से तोम, नोम, ओम, ओ, तो, ओम, नोम इस प्रकार के अनेक शब्दों से युक्त अनुकरणीय गीत शैली को तराना कहते हैं।

तराना, गीत एक ऐसा प्रकार है, जिसमें शब्दों का स्थान गौण है, जहाँ कल्पना ही नर्तन क्रिया का प्रमुख आधार है। तराने का प्रयोग कथक नृत्य के नृत्य-पक्ष में किया जाता है, क्योंकि निरर्थक या अर्थहीन शब्दों के साथ कल्पित भावों का इसमें पूर्णतः समावेश रहता है। प्रयोग के दौरान नर्तक या रचनाकार इसमें तोड़े तथा परणों का भी समावेश करते हैं, किन्तु इसमें भी लयकारी का आधिक्य होता है। अतः बीच-बीच में तोड़े-टुकड़े का भी प्रयोग विशेष चमत्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से किया जाता है।

अतः तराना निश्चित रूप से अर्थहीन बोलों पर आश्रित भावयुक्त कल्पना है, जिसका साकार रूप कथक नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है और इस बात की प्रबल संभावना है, कि 'तराना' मुगल काल में दरबारों में प्रचलित रहा होगा।

कथक नृत्य और चतुरंग गायन शैली

चतुरंग से तात्पर्य चार रंग, अर्थात् चार प्रकार के गीतों का संगम होता है— (1) गीत के बोल, (2) सरगम, (3) त्रिवट तथा (4) तराना। चतुरंग एक गीत प्रकार है, जिसमें सार्थक और निरर्थक शब्दों का समन्वय है तथा शब्द (काव्यगीत के रूप में) स्वर (सरगम), ताल (त्रिवट) के रूप में तबले व पखावज के बोलों को रागों में बांधा जाता है तथा तराना, इन चारों को लेकर चतुरंग की रचना की जाती है। मुगल कालीन महान भारतीय संगीतकार गोपाल नायक द्वारा रचित पद में त्रिवट और तराना (तेलाना) के साथ-साथ चतुरंग का प्रयोग लक्षित होता है—

“सुर प्रथम सा रि ग म नाद रे, ताहै प्रगट वेद रे।
धारु ध्रुपद संगीत प्रबन्ध छंद ग्रनी गावत शेष रे।।
चतुरंग त्रेवट तेलाना सप्त सुरन कौ भेद रे।

कहे नायकगोपाल सरेगम अगम सुर देख रे।।⁷

कथक नृत्य भाव-ताल दोनों की संयुक्त प्रस्तुति के लिए उचित अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार कथक नृत्य में चतुरंग नाचे जाने की जनप्रिय परम्परा रही है। तराना ही चतुरंग की गीत समाप्ति की स्वर सूचक होता है। स्वर, पद, पाट (मृदंगाक्षर) एवं ऐनक (तन तनना जैसे शब्द) का व्यवस्थित रूप एक प्रकार की गीत शैली है। त्रिवट और तराना शैलियाँ भी मुगल काल में प्रचलित थीं और चतुरंग में इनका समावेश होने बात विद्वानों ने कही है। अतः जिससे यह तथ्य पुष्ट होता है, कि मुगल काल में चतुरंग पर कथक नृत्य प्रदर्शित करने की परम्परा थी, विशेष रूप से जयपुर और लखनऊ दरबार में।

कथक नृत्य और तुमरी गायन शैली

तुमरी से तात्पर्य 'तुमक कर चलना' है। प्रायः कला जगत में तुमरी को इसी अर्थ में ग्रहण किया जाता है। तुमरी शैली मूलतः उपशास्त्रीय गायन शैली है, जिसमें राग की अपेक्षा पद और इसमें निहित भाव का अधिक महत्व होता है। श्रृंगार रस प्रधान इस गायन शैली में नायक-नायिका के विभिन्न रोमांचक प्रसंगों को चित्रित किया जाता है। यह गायन शैली सुनने में जितनी प्रभावकारी और लुभावनी होती है, कथक नृत्य में भाव प्रदर्शन में भी उतनी ही लुभावनी और रोमांचकारी प्रतीत होती है।

मुगलकाल में दरबारी गायकों द्वारा अनेक तुमरियों की रचना की गई, जिनमें ब्रज, अवधी भाषाओं के साथ-साथ उर्दू, अरबी और फ़ारसी शब्दों का भी समावेश होने लगा। यद्यपि परम्परागत तुमरी में कृष्ण भक्ति विशेष रूप से लक्षित होती है तथापि नायक-नायिका के विरह, मिलन आदि विषय भी तुमरियों के वर्ण्य-विषय रहे हैं। इसका कारण संभवतः यह है, कि मुस्लिम शासकों के अतिरिक्त हिन्दू राजाओं के दरबारों में यह गायन शैली विख्यात थी।

गायक कलाकार (या संगतकार) द्वारा गायी जाने वाली तुमरी में निहित भावों के आधार पर कथकों द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। कथक नृत्य में तुमरी के प्रचलन का श्रेय कथकाचार्य बिन्दादीन महाराज को विशेष रूप से दिया जाता है। बिन्दादीन महाराज ने अनेक तुमरियों की रचना की, जो आज भी कथक नृत्य जगत में प्रचलित हैं। वहीं बात करें बनारस या पूरब अंग की तुमरी की, तो इसकी अपनी ही विशेषतायें हैं। यहाँ गायी जाने वाली तुमरियों से कथक नृत्य के कलाकार भी सदा आकर्षित रहे हैं। इस क्षेत्र की तुमरी हिन्दी, ब्रज और अवधी भाषा का प्रयोग विशेष रूप से होता है।

- (1) "कान्हा मैं तोसे हारी छोड़ो सारी सुनो बिहारी नहीं
मैं दूँगी तोहे गारी।

निसदिन छेड़ करत नहीं जाने देत

पनघटवा की गैल सखी री

छोड़ो जी छोड़ो जी पट घूँघटा न उलटो

'बिन्दा' सुनो ये नाही माने देखे सब नारी।।"⁸

- (2) "जाने दे मैका सुनो सजनवा,
काहे करत तुम नित नित हमसे रार?
नाहीं नाहीं मानूँगी अब मैं तोरी।"⁹

तुमरी गायकी को स्वतंत्र गायन के रूप में जितनी ख्याति मिली, समान रूप से कथक नृत्य के साथ संयुक्त रूप से भी प्राप्त हुई। तुमरी गायकी की रसात्मक प्रस्तुति में कथक नृत्य के माध्यम से जो अभिनय का समावेश हुआ, उससे इस गायन शैली का एक नया ही स्वरूप विकसित हो सका। इससे तुमरी गायकी और कथक नृत्य दोनों का विकास हुआ, जिसका साक्ष्य मुगल काल रहा है।

कथक नृत्य और दादरा गायन शैली

तुमरी की ही भाँति दादरा भी एक उप-शास्त्रीय गीत शैली है, जो लोक संगीत और लोक परम्परा से प्रभावित होती है। उल्लेखनीय है, कि 'दादरा एक ताल का भी नाम है, किन्तु एक विशेष गायकी को भी दादरा कहते हैं। इसकी चाल गज़ल से मिलती-जुलती होती है। इसमें प्रायः श्रृंगार रस के गीत होते हैं।'¹⁰ मुस्लिम शासकों के दरबारों में दादरा गायन शैली पर कथक या अन्य कोई नृत्य प्रस्तुत करने के लिखित प्रमाण प्रायः प्राप्त नहीं होते। संभव है, कि मुगल काल के हिन्दू शासकों (जिनमें मध्य भारत के ग्वालियर राजवंश आदि) में दादरा गायन शैली पर नृत्य की भी परम्परा रही हो। चूँकि ग्वालियर का संबंध ध्रुपद गायन से भी रहा है अतः यहाँ ऐसे पदों की रचना किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है, जो नृत्योचित थे।

कथक नृत्य और भजन

भजन शब्द से आशय ईश्वर या आराध्य की आराधना से है। पद अथवा शब्द समूहों के प्रबंध का एक खण्ड 'भजन' कहलाता है, जो गीत का एक साहित्यिक अंग है। भक्तिकाल में ऐसे अनेक रचनाकारों के नामोल्लेख साहित्येतिहास में प्राप्त होते हैं, जिनकी रचनाओं के आधार पर गीत गाये जाने की परम्परा ब्रज में प्रचलित थी। ब्रज के ही एक रचनाकार लक्ष्मी स्वामी का उल्लेख प्राप्त होता है, जो कृष्ण भक्ति के अनुयायी थे और उन्होंने रासलीला और रासनृत्य पर आधारित रचनाएँ लिखीं। उन्हीं रचनाओं में एक रचना यहाँ उदाहरण स्वरूप दी जा रही है—

“नाचत रास में रास—बिहारी।
नँचवत हैं ब्रज की सब नारी।।
तादीम—तादीम तत—तत थेई—थेई।
थुंगन—थुंगन देत गात न्यारी।।”¹¹

मुगलकाल में राजस्थान के राजपूत शासकों के दरबारों में भजनों पर नृत्य किये जाते थे। जयपुर घराने के कथकों की रुचि और प्रवृत्ति के संबंध में उल्लेख प्राप्त होता है, उस आधार पर यह कहा जा सकता है, भजन गायन के साथ कथक नृत्य इस घराने में होता रहा होगा।

कथक नृत्य और ग़ज़ल

‘ग़ज़ल’ अरबी साहित्य की प्रसिद्ध काव्य विधा है, जो बाद में फ़ारसी, उर्दू, नेपाली और हिन्दी साहित्य में भी बेहद लोकप्रिय हुई। ग़ज़ल वास्तव में दाम्पत्य प्रणय भावनाओं की अभिव्यंजना है तथा नृत्य के अंग द्वारा इसी भाव को सुन्दरता एवं श्रृंगारिकता के साथ प्रस्तुत करना है, जो कथक नृत्य शैली के अनुरूप प्रतीत होता है। ग़ज़ल में शब्द के उच्चारण को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है और इसकी यही विशेषता इसे नृत्योचित बनाती है।

कथक नृत्य और अन्य गायन शैलियाँ

अन्य गायन शैलियों में टप्पा, कजरी और चैती को स्थान देना उचित होगा। यद्यपि ये तीनों गायन शैलियों लोक शैलियों पर आधारित हैं तथापि इन्हें शास्त्रीय स्वरूप प्रदान कर उप-शास्त्रीय शैलियों के रूप में विकसित किया गया। इस नृत्य का विकास एक व्यक्ति या एक घराना या एक दरबार या हिन्दू संस्कृति या मुस्लिम संस्कृति के द्वारा नहीं किया गया अपितु इस नृत्य का विकास गायन शैलियों के अनुरूप भक्तिकालीन और रीतिकालीन साहित्य के अनुसार खण्ड-खण्ड में हुआ। संभव है कि इन्हीं खण्डों के एकीकृत स्वरूप के आधार कथक नृत्य के नृत्य पक्ष और भाव पक्ष का भी विकास हुआ हो।

संदर्भ सूची :

- 1 बनर्जी, असीत कुमार, ‘हिन्दुस्तानी संगीत परिवर्तनशीलता (उत्तर मुगल काल से आधुनिक युग पर्यन्त)’, पृ. 2
- 2 नायक, हरिप्रसाद ‘अंशुमाली’, ‘भारतीय संगीत की ऐतिहासिक परम्परा’, संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय हाथरस, मई 1968, पृ. 7
- 3 उपाध्याय, आदिनाथ, ‘भारतीय संगीत जगत् का प्रकाशस्तम्भ—ध्रुपद’, ध्रुपद वार्षिकी, ऑल इण्डिया काशी राज ट्रस्ट, वाराणसी, अंक 1990, पृ. 82
- 4 द्विवेदी, डॉ. हरिहर निवास, ‘ग़ालियरी ध्रुपद नृत्य और उसका रंगमंच’, ध्रुपद वार्षिकी, ऑल इण्डिया काशी राज ट्रस्ट, वाराणसी, अंक 1986, पृ. 54
- 5 शर्मा, डॉ. प्रेमलता, ‘ध्रुपद और नृत्य’, ध्रुपद वार्षिकी, ऑल इण्डिया काशी राज ट्रस्ट, वाराणसी, अंक 1987, पृ. 72
- 6 दवे, डॉ. प्रेम, ‘कथक नृत्य परम्परा’, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 240
- 7 Rabindra, Bharati, “The Forgotten forms of Hindustani Music”, Kanishka Publishers & Distributors, New Delhi, First Edition, 2008, p. 37
- 8 महाराज, बिरजू, ‘रसगुंजन : महाराज बिंदादीन की रचनाएँ’, पॉप्युलर प्रकाशन, मुम्बई, संस्करण 1995, पृ. 27
- 9 तैलंग, गंगाधर राव, ‘तुमरी संग्रह’, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ, संस्करण 1977, भाग—दो, पृ. 169
- 10 गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण (सम्पादक), ‘संगीत विषारद’, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ. 168
- 11 मीतल, प्रभुदयाल, ‘ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास’, भाग—2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966, पृ. 207

